Forms of human consciousness

(मानव चेतना की प्रकृति)

चंचल सूर्यवंशी*; मीनाक्षी खंडैत **

*रिसर्च फेलो, एकीकृत चिकित्सा विभाग,

श्री देवराज यूआरएस एकेडमी ऑफ हायर एजुकेशन ऑफ रिसर्च, कोलार, बैंगलोर ,

**छात्रा, देव संस्कृति विश्वविद्यालय हरिद्वार

DOI: 10.52984/yogarima1102

संक्षेपिका–

मानव चेतना से तात्पर्य शरीरस्थ चेतना से है। वस्तुतः मानव चेतना एक ही है परंतु वह उपाधियों के भेद के कारण अनेक रूपों में प्रत्यक्ष होती है। चेतना प्रत्येक मानव में अपनी विशिष्ट होती है, अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जितने प्राणी इस संसार में व्याप्त है उतनी ही चेतना भी विद्यमान है। मानव चेतना वस्तुतः परमार्थ चेतना से अभिन्न होते हुए भी अहं भाव के कारण भिन्न हो जाती है, इस अहं भाव के कारण मानव चेतना का स्वप्रकाशित होने में असक्षम होती है। मानव चेतना को अविद्या के आवरण से आच्छादित परमात्म चेतना कहा जा सकता है। अविद्या के नाश होने पर मानव चेतना अपने वास्तविक स्वरूप ईश्वर चेतना में विलीन हो जाती है।[1]

प्रस्तावना –

चेतना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ डेविड फ्राअले कहते है कि ''चेतना सृष्टि की सबसे अदभुत चीज है। इसकी गहराई और व्यापकता की कोई सीमा नही है।''[2] मनोवैज्ञानिक युंग ने चेतना को चित्त के रूप में स्वीकारा है।[3] डॉ रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार ''चेतना, जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो निर्जीव पदार्थो से भिन्न बनाता है।''[4] चेतना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ डेविड फ्राअले कहते है कि ''चेतना सृष्टि की सबसे अदभुत चीज है। इसकी गहराई और व्यापकता की कोई सीमा नही है।''[5]

[1] मानव चेतना, ईश्वर भारद्वाज, पृ45

[2] Conciousness is the most wonderful thing in the universe, there is no limit to its depth and grasp. Dr. David Frawley, Ayurveda and the mind. Pg 76

[3] C.G. Jung, Analytical Psychology: its theory& Practice.

[4] रामप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विश्वकोश पृ 282

[5] Conciousness is the most wonderful thing in the universe, there is no limit to its depth and grasp. Dr. David Frawley, Ayurveda and the mind. Pg 76

मानव चेतना को ऋग्वेद में गोपा[6], सुपर्णा, जीव[7], अमर्त्य[8] तथा अजोभाग[9] आदि नामों से भी पुकारा है। इसके अतिरिक्त मानव चेतना को चरण्[10] नाम से भी संबोधित किया है। कठोपनिषद् में मानव चेतना के विषय में कहा है कि मानव चेतना, शरीर, इन्द्रियों, मनतव तथा बुद्धि सभी से भिन्न है। अपितु ज्ञानेन्द्रियॉ, मन, बुद्धि तीनों से युक्त आत्मा ही चेतना है।युगदृष्टा पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी चेतना के विषय में कहते है कि –''चेतना को तो चेतना ही अनुभव कर सकती है। चेतना को समझने का कोई यंत्र बना होगा तो वह चेतना ही होगा। आत्मा और परमात्मा को प्रयोगशालाओं में अब तक सिद्ध नही किया जा सका और वह भविष्य में भी न ही सिद्ध हो सकेगा।''

चेतना का आध्यात्मिक स्वरूप–

मानव चेतना का आकार विस्तार अतिसुक्ष्म होने के बाद भी वह अपने ज्ञानरूपी गुण के कारण वह समस्त देह में व्याप्त, सुख–दुःख को अनुभव कर सकने में सक्षम होती है। इसकी तुलना दीपक की लौ से की जा सकती है क्योंकि दीपक की लौ भी अत्यंत सुक्ष्म होती है परंतु वह बडे क्षेत्र के तम को हरने में सक्षम होती है।[11] मानव चेतना को उपनिषदों में जीवात्मा की संज्ञा से विभुषित किया गया है। तथा इस जीवात्मा को ही कर्ता तथा भोक्ता की उपाधि भी प्रदान की है। मानवीय चेतना तथा परमात्मीय चेतना को प्रतिपादित करते हुए वर्णन मिलता है कि यह दोनों ही चेतनाएँ एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों से की है।[12] योग वशिष्ठ में वर्णन मिलता है कि '' जिस प्रकार जल में लहरों की चंचलता है। जलते हुए दीपक में प्रकाश किरणों की स्फुरता अग्नि में चिंगारियॉ चंद्रमा में शीतल किरणे, वृक्ष में पुष्प पत्तियों की शोभा है उसी प्रकार सृष्टि के अणु में वही परम चेतना व्याप्त है।''

मानव चेतना को उपनिषदों में जीवात्मा की संज्ञा से विभुषित किया गया है। तथा इस जीवात्मा को ही कर्ता तथा भोक्ता की उपाधि भी प्रदान की है। मानवीय चेतना तथा परमात्मीय चेतना को प्रतिपादित करते हुए वर्णन मिलता है कि यह दोनों ही चेतनाएँ एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों से की है।[13] प्रकृति में चेतना त्रिगुणात्मक रूपों में विद्यमान है।[14] तथा सत इसका परिष्कृत रूप है। अपितु तीनों ही गुण प्रत्येक जीव में न्युनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते है। वेदांत में चेतना को अविद्या तथा माया की अनुपस्थिति के रूप में चरितार्थ किया गया है तथा चेतना को आत्मबोध का सूचक कहा है। यहा आत्मा और ब्रह्म को एकरूप में प्रदर्शित किया गया है।[15] मनुष्य की चेतना अथवा विवेकी मन उसके अवचेतन, अथवा प्राकृतिक, मन पर अपना नियंत्रण रखता है। मनुष्य और पशु में यही विशेष भेद है। पशुओं के जीवन में इस प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता, अतएव जैसा वे चाहते हैं वैसा करते हैं। मनुष्य चेतनायुक्त प्राणी है,

[6] ऋग्वेद 1/164/31

[7] ऋग्वेद 1/164/20–22

[8] ऋग्वेद 1/164/30

[9] ऋग्वेद 1/164/30

[10] ऋग्वेद 1/10/16/4

[11] सर्वदर्शन संग्रह 2/4/10

[12] वैदिक संहिताओं में विविध विधाए, डॉ. कृष्णलाल, पृ 12

[13] वैदिक संहिताओं में विविध विधाए, डॉ. कृष्णलाल, पृ 12

[14] मानव चेतना, कुमार कामाख्या, पृ सं. 64

[15] मानव चेतना, कुमार कामाख्या, पृ सं. 65

अतएव कोई भी क्रिया करने के पहले वह उसके परिणाम के बारे में भली प्रकार सोच लेता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चेतना

मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानव की देह में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण ही वह सभी प्रकार की अनुभूतियाँ तथा प्रक्रियाओं को करता हैं। चेतना के कारण ही व्यक्ति देखता, सुनता, समझता, विचारना, अनुभव करना और अनेक विषय पर चिंतन करता हैं। चेतना की उपस्थिति के कारण ही मानव को सुख–दुःख की अनुभूति भी होती है और इसी के कारण अनेक प्रकार के निश्चय करते तथा अनेक पदार्थों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते हैं।

चेतना को दर्शन में स्वयंप्रकाश तत्व के अर्थ में देखा गया है अर्थात सर्वव्यापक सत्ता के रूप में माना है वहीं मनोविज्ञान अभी तक चेतना के स्वरूप में आगे नहीं बढ़ सका है। चेतना ही सभी पदार्थो को, जड़ चेतन, शरीर मन, निर्जीव जीवित, मस्तिष्क स्नायु आदि को बनाती है, उनका स्वरूप निरूपित करती है। फिर चेतना को इनके द्वारा समझाने की चेष्टा करना अविचार है। मेगडूगल ने चेतना के संबंध में कहा है कि जिस प्रकार भौतिक विज्ञान की अपनी ही सोचने की विधियाँ और विशेष प्रकार के प्रदत्त हैं उसी प्रकार चेतना के विषय में चिंतन करने की अपनी ही विधियाँ और प्रदत्त हैं। अतएव चेतना के विषय में भौतिक विज्ञान की विधियों से न तो सोचा जा सकता है और न उसके प्रदत्त इसके काम में आ सकते हैं। फिर भौतिक विज्ञान स्वयं अपनी उन अंतिम इकाइयों के स्वरूप के विषय में निश्चित मत प्रकाशित नहीं कर पाया है जो उस विज्ञान के आधार हैं। पदार्थ, शक्ति, गति आदि के विषय में अभी तक कामचलाऊ जानकारी हो सकी है। अभी तक उनके स्वरूप के विषय में अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। अतएव चेतना के विषय में अंतिम निर्णय की आशा कर लेना युक्तिसंगत नहीं है। चेतना को अचेतन तत्व के द्वारा समझाना, अर्थात् उसमें कार्य–कारण संबंध जोड़ना सर्वथा अविवेकपूर्ण है।

चेतना को जिन मनोवैज्ञानिकों ने जड़ पदार्थ की क्रियाओं के परिणाम के रूप में समझाने की चेष्टा की है अर्थात् जिन्होंने इसे शारीरिक क्रियाओं, स्नायुओं के स्पंदन का परिणाम माना है, उन्होंने चेतना की उपस्थिति को ही समाप्त कर दिया है। उन्होंने चेतना की उपस्थिति को ही समाप्त कर दिया है। पैवलाफ और वाटसन महोदय के चिंतन का यही परिणाम हुआ है। उनके कथनानुसार मन अथवा चेतना के विषय में मनोविज्ञान में सोचना ही व्यर्थ है। मनोविज्ञान का विषय मनुष्य का दृश्यमान व्यवहार ही होना चाहिए।

चेतना के शरीर में संबंध के विषय में मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। कुछ के अनुसार मनुष्य के बृहत् मस्तिष्क में होनेवाली क्रियाओं, अर्थात् कुछ नाड़ियों के स्पंदन का परिणाम ही चेतना है। यह अपने में स्वतंत्र कोई तत्व नहीं है। दूसरों के अनुसार चेतना स्वयं तत्व है और उसका शरीर से आपसी संबंध है, अर्थात् चेतना में होनेवाली क्रियाएँ शरीर को प्रभावित करती हैं। कभी–कभी चेतना की क्रियाओं से शरीर प्रभावित नहीं होता और कभी शरीर की क्रियाओं से चेतना प्रभावित नहीं होती। एक मत के अनुसार शरीर चेतना के कार्य करने का यंत्र मात्र हैं, जिसे वह कभी उपयोग में लाती है और कभी नहीं लाती। परंतु यदि शरीर रूपी यंत्र बिगड़ जाए, अथवा टूट जाए, तो चेतना अपने कामों को करने में असक्षम हो जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिक विचारकों द्वारा विज्ञान की वर्तमान

प्रगति की अवस्था में उपर्युक्त मत ही सर्वोत्तम माना गया है।

मानव चेतना की तीन विशेषताएँ मनोविज्ञान में बतायी गई हैं तथा कहा है कि ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक इन तीन रूपों में चेतना मानव शरीर को दुसरे प्राणियों की तुलना में संपन्न तथा भिन्न बनाती है। एक ओर भारतीय दार्शनिकों ने इसे सच्चिदानंद रूप कहा हैतो वहीं दुसरी ओर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के विचारों ने मानव चेतना को उक्त निरोपज्ञा के रूप में विभुषित किया है। चेतना वह तत्व है जिसमें ज्ञान की, भाव की, बुद्धि की तथा व्यक्ति अर्थात् क्रियाशीलता की अनुभूति तथा शक्ति निहित होती है। जब व्यक्ति किसी पदार्थ को जानता हैं, तो उसके स्वरूप का ज्ञान उसे होता है, उस वस्तु के प्रति प्रिय अथवा अप्रिय भाव पैदा होता है और उसके प्रति इच्छा पैदा होती है, जिसके कारण या तो वह उसे स्वयं के समीप लाता है अथवा उसे स्वयं से दूर करने की चेष्टा करता हैं। यह चेतना की मानव देह में उपस्थिति का ही द्योतक है।

चेतना के स्तर

चेतना के तीन स्तर माने गए हैं: चेतन, अवचेतन और अचेतन। चेतन स्तर पर वे सभी बातें रहती हैं जिनके द्वारा हम सोचते, समझते और कार्य करते हैं। चेतना में ही मनुष्य का अहंभाव रहता है और यहीं विचारों का संगठन होता है। अवचेतन स्तर में वे बातें रहती हैं जिनका ज्ञान हमें तत्क्षण नहीं रहता, परंतु समय पर याद की जा सकती हैं। अचेतन स्तर में वे बातें रहती हैं जो हम भूल चुके हैं और जो हमारे यत्न करने पर भी हमें याद नहीं आतीं और विशेष प्रक्रिया से जिन्हें याद कराया जाता है। जो अनुभूतियाँ एक बार चेतना में रहती हैं, वे ही कभी अवचेतन और अचेतन मन में चली जाती हैं। ये अनुभूतियाँ सर्वथा निष्क्रिय नहीं होतीं, वरन् मानव को अनजाने ही प्रभावित करती रहती हैं।

कठोपनिषद् में आत्मा रूपी चेतना को जन्म–मरण से मुक्त, नित्य, शाश्वत, चैतन्य सत्ता के रूप में उल्लेखित किया गया है। तथा यह भी कहा गया है कि चेतना निराकार तथा सर्वव्यापक सत्ता के रूप में समस्त देहधारियों की देह में विद्यमान रहती है। सामान्य मनुष्य की सत्ता को आत्मा के मनोमय कोश के स्तर का कहा गया है इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख उपनिषद में किया है तथा बताया है कि– **अथं पुरूषो मनोमयः।** मनुष्य मनोमय है। मनुष्य का संचालन उसका मनस्तत्व करता है।[16] उपनिषदों में मानव चेतना की चार मुख्य अवस्थाओं का वर्णन मिलता है जो क्रमशः जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था तथा तुरीयावस्था है।[17] अन्य उपनिषदों में भी चेतना की इन अवस्थाओं का वर्णन प्राप्त होता है। जाग्रतावस्था– यह मानव चेतना की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में मानव चेतना को विश्व कहा जाता है, तथा व्यक्ति इसमें बाह्य इन्द्रियों द्वारा विषयों का भोग करता है।

स्वप्नावस्था– यह मानव चेतना की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में मानव चेतना को विश्व कहा जाता है, स्वप्नावस्था में व्यक्ति स्थूल वस्तुओं के साथ आंतरिक सुक्ष्म वस्तुओं को भी जानता है तथा उनका भोग करने में सक्षम होता है।

[16] तैतरीय उपनिषद् 1/6/1

[17] माण्डुक्योपनिषद् 1–4

सुषुप्ति अवस्था– यह मानव चेतना की तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में मानव चेतना को प्राज्ञ कहा जाता है, तथा यह मानव देह में शुद्ध चित्त के रूप में उपस्थित रहती है। सुषुप्ति अवस्था में व्यक्ति आंतरिक तथा बाह्य दोनों वस्तुओं को नहीं देख पाता।

तुरीयावस्था– यह मानव चेतना की चौथी अवस्था है। इस अवस्था में मानव चेतना को आत्मा कहा जाता है, तुरीयावस्था को शुद्ध चैतन्य की अवस्था के नाम से भी जाना जाता है।

चेतना का विकास

चेतना सामाजिक वातावरण के संपर्क से विकसित होती है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता, औचित्य और व्यवहारकुशलता प्राप्त करता है। इसे चेतना का विकास कहा जाता है। विकास की चरम सीमा में चेतना निज स्वतंत्रता की अनुभूति करती है। वह सामाजिक बातों को प्रभावित कर सकती है और उनसे प्रभावित होती है, परंतु इस प्रभाव से अपने आपको अलग भी कर सकती है। चेतना को इस प्रकार की अनुभूति को शुद्ध चैतन्य अथवा प्रमाता, आत्मा आदि शब्दों से संबोधित किया जाता है। इसकी चर्चा चार्ल्स युंग, स्पेंग्ल, विलियम ब्राउन आदि विद्वानों ने की है। इसे देशकाल की सीमा के बाहर माना गया है।

उपसंहार– चेतना प्राचीन काल से ही शोध अध्ययन तथा अन्वेषण का विषय रही है। शोध का प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह दर्शन हो, योग हो, मनोविज्ञान हो अथवा आधुनिक विज्ञान हो, सभी चेतना के विविध पक्षों को अतिसुक्ष्म दृष्टि से रहस्यों का उद्घाटन करने का प्रयास करते है। आयुर्वेद में आत्मा अर्थात चेतना को जीवात्मा और परमात्मा से तात्पर्य विशुद्ध चेतन तत्व कहा गया है। अनादि होने के कारण परम चेतना की उत्पत्ति नही होती, परंतु मानव चेतना की उत्पत्ति मोह, इच्छा, द्वेष तथा कर्म के अधीन होती है। अर्थात ईश्वरीय चेतना नश्वर, अविनाशी, अनंत है परंतु मानव चेतना उत्पद्यमान है। तंत्र चेतना के शुद्ध स्वरूप को शिव या परब्रहम कहा है। अतः चेतना के सभी आयामों को जानने के लिए चेतना को समग्र रूप से अध्ययन करने की आवश्यकता है।